International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 1509-1511

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 1509-1511
www.allresearchjournal.com
Received: 09-05-2017
Accepted: 16-06-2017

डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

समष्टि-भाव की पोषक संस्कृत भाषा

डॉ. सर्वजीत दुबे

सारांश
वैश्वीकरण के इस युग में लोग पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में बहे जा रहे हैं। विदेशी साहित्य और सभ्यता के प्रति मोहासक्त लोग भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीन हो गए हैं। आंग्ल भाषा उन्हें संजीवनी बूटी सी लगती है जबकि संस्कृत भाषा अनावश्यक भार। अपनी संस्कृति की भाषा से कट जाने के कारण संस्कृत के संबंध में कई प्रकार की भ्रांतियां प्रचलित हैं। वैश्वीकरण के भौतिकता प्रधान आधुनिक युग में अध्यात्म प्रधान संस्कृत भाषा के बारे में कई भ्रांतियों के निराकरण हेतु वस्तुस्थिति को सामने लाना जरूरी है। अनेक महत्वपूर्ण भ्रांतियों में से एक प्रमुख भ्रांति यह है कि 21वीं सदी में पुरातन विचारों से भरी हुई संस्कृत भाषा क्या योगदान कर सकती हैं?

कूटशब्द : वैश्वीकरण, विदेशी साहित्य, संस्कृत भाषा, अध्यात्म

प्रस्तावना
आज जाति,धर्म,क्षेत्र इत्यादि अनेक आधारों पर मनुष्य को बांटा जा रहा है। संयुक्त परिवार आज लुप्त हो गया। आधुनिक जीवनशैली ने एकल परिवार में भी सेंध लगानी शुरू कर दी है। मनुष्य नितांत अकेला हो गया है। इसके कारण आत्महत्या की दर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। आत्महत्या को रोकने के लिए शिक्षण संस्थानों को विशेष कार्य योजना बनाने को कहा जा रहा है।
ऐसी परिस्थिति में जब तक संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रंथों में उल्लेखित समष्टि,समानता और सद्भाव की भावना को जीवन का आधार नहीं बनाया जाता तब तक हालात नहीं सुधर सकते।
दुर्भाग्य की बात है कि संस्कृत भाषा को पुरानी होने के कारण दकियानूसी विचारों से भरी हुई भाषा प्रायः लोग मान लेते हैं। वैश्वीकरण के इस युग में भौतिकता की चकाचौंध से आक्रांत लोगों के लिए आध्यात्मिकता की बातें बेमानी और बेमतलब की मालूम होती हैं। गहराई से देखने पर पता चलता है कि संस्कृत भाषा में निबद्ध विचार सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं।
प्राचीन होने के बावजूद संस्कृत ग्रंथों का मूलभूत सिद्धांत समष्टि–भावना है, जिसका आधार समानता तथा सद्भावना है। समष्टि–भावना का अर्थ है– दूसरों के साथ में ही अपने हित के संपादन की भावना। यह भावना सामाजिक जीवन का प्राण है।
अधिकतर वैदिक प्रार्थनाएं बहुवचन में हैं जिससे यह पता चलता है कि उस समय एकांगी प्रवृत्ति की जगह सामूहिक प्रवृत्ति पर विशेष जोर था, जैसे. 'यद् भद्रं तन्न आ सुव'[1], 'धियो यो नः प्रचोदयात्'[2]। वहां सामूहिक रूप से शांति की कामना की गई है 'न शर्म यच्छ'[3]।
विभिन्न देवों से मंगल,सुख, कल्याण और शांति की सामूहिक प्रार्थनाएं हैं–

'शं नो मित्ररू शं नो भवत्वयर्मा
शं नो इंद्रो बृहस्पतिरू शं नो विष्णुरूरूक्रमरू।।'[4]

इसी प्रकार सभी संहिताओं की प्रार्थनाओं में अधिकतर हम सबको या हम सबके लिए कहा गया है। उत्तम पुरुष बहुवचन प्रयोगों से स्पष्ट हैं कि प्रार्थी की दृष्टि में समष्टिगत लाभ अपेक्षाकृत अधिक इष्ट रहा है।
समष्टि भावना की सशक्त अभिव्यक्ति उन वैदिक मंत्रों में मिलती हैं जिनमें सभी मनुष्यों या सभी प्राणियों के माता–पिता के रूप में परमेश्वर का स्तवन किया गया है, यथा–

'त्वं हि नरू पिता वसो त्वं माता शतक्रतओ बभूविथ।'[5]
अर्थात् हे इंद्रस्वरूप परमेश्वर! तुम ही हमारे लिए पिता हो और तुम ही हमारे लिए माता हो।

'प्रजापतेः प्रजा अभूम'[6] अर्थात् हम सब प्रजापति की संताने हैं।
'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता।'[7] अर्थात् वही हमारा बंधु जनक और विधाता है।

इसी परंपरा में वे मंत्र भी उल्लेखनीय हैं जिनमें द्यौस् को पिता और पृथ्वी को माता कहा गया है–

'उप मां द्यौष्पिता ह्वयताम्
उप मां पृथ्वी माता ह्वयताम्।'[8]

ऋक्संहिता का संज्ञानम् नामक अंतिम सूक्त उत्कृष्ट सामाजिक भावना का सुंदर निदर्शन है–

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।'[9]

अर्थात् दिव्य शक्तियों से युक्त देव परस्पर अविरोध भाव से अपने–अपने कार्यों को करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी सृष्टि भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त हो, एकमत से रहो और परस्पर सद्भाव में रत हो। इसमें सब जनों की क्रियाओं, गति, विचारों और मन, बुद्धि के पूर्ण सामंजस्य की प्रेरणा दी गई है। सभी का एक सा कल्याणकारी दृष्टिकोण समाज की उन्नति का आधार है।
ये मंत्र विश्वकल्याण और वैश्विकभावना का आधार है क्योंकि जब माता पिता समान है तो संतानें असमान कैसे हो सकती हैं?
अथर्ववेद संहिता में मानसिकता एकता की महत्ता के निर्देशक अनेक सूक्त हैं,जिनमें पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय स्तर पर सौहार्द और सद्भावना का प्रतिपादन किया गया है। यथा–

'सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोभि वः।।'[10]
'समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।।'[11]

समानता की भावना का उद्भव और विकास मानवीय मन के धरातल पर होता है। वैदिक दृष्टिकोण में इसका प्रमुख आधार है–सांमनस्यम् या समचित्तता।
सांमनस्य सूक्तों का विषय है–द्रोह एवं संघर्ष की शांति और संघर्षरत पक्षों में समन्वय। एक परिवार में समन्वय की प्रार्थना है– तुम एक दूसरे में उसी प्रकार प्रसन्नता को प्राप्त करो, जिस प्रकार एक गौ अपने नवजात वत्स में अनुभव करती है।... एकचित्त होकर एक उद्देश्य में संलग्न होकर तुम प्रेम भरे वचन बोलो।
इसी प्रकार वेदों में एक ओर प्रजा के मन, कार्य एवं संकल्पों में एकता प्राप्ति की अभिलाषा की गई है तो दूसरी ओर राजा उनके मन और विचारों को अपने मन और विचारों के अनुकूल बनाने की कामना व्यक्त करता है।
संस्कृत के इन प्राचीन ग्रंथों में मनुष्यों के बाह्य व्यवहार में सुधार के लिए अविद्वेषम् मंत्र दिया गया है जिसका संदेश है –द्वेष मत करो ,सब सम्यक भ्रातृभाव को धारण करते हुए ऐश्वर्य और उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करो और आगे बढ़ो।
समता भाव के व्यावहारिक आधार के रूप में सहभोज और सहपान का स्पष्ट उल्लेख मंत्रों में किया गया है–
'सन्धिश्च मे सपीतिश्च मे'[12] अर्थात् अपने साथियों के साथ सहपान और सहभोज मुझे प्राप्त हो।
अथर्ववेद में प्रार्थना है –तुम्हारे जलपान का स्थान एक हो, तुम्हारा भोजन मिलकर हो,तुम्हें समान स्नेहपाश में बांधता हूं–
'समानी प्रपा सह वो अन्नभागरू समानेयोक्त्रे सह वो युनज्मि'[13]
इसी प्रकार यजुर्वेद में कामना है कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब प्राणी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें–
'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।'[14]
मानवीय समानता की भावना से युक्त हृदयवाला मनुष्य घृणा और विद्वेषशून्य होने के कारण वाणी की मधुरता से संपन्न हो जाता है–

'मधुमती वाचं वदतु'[15]
'वल्गु वदन्तः'[16]

समानता,स्वतंत्रता और बंधुत्व के नारे को तथाकथित आधुनिकतावादी भले ही 1789 में हुई फ्रांस की क्रांति की देन मानते हों किंतु वास्तविकता इन उदाहरणों से स्पष्ट होती है कि ये विचार संस्कृत के ऋषियों ने बहुत पहले व्यक्त किया था। समानता और भ्रातृत्व को बढ़ाने वाले इतने व्यापक विचार इतने सुसंगत ढंग से किसी अन्य भाषा के साहित्य में ढूंढना मुश्किल है। हमारे ऋषि जानते थे कि युद्ध मनुष्य के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। अतएव उस मन मस्तिष्क को इतने उदार विचार और प्रार्थना से भर दिया जाए कि घृणा के लिए कोई जगह नहीं रह जाए।
इन मंत्रों की अभिव्यक्ति इतनी संगीतात्मक है कि उनका अर्थ समझे बिना भी उनके श्रवण मात्र से चित्त निर्मल एवं शांत हो जाता है। निर्मल और शांत चित्त से कलह हो ही नहीं सकता। आज व्यक्ति का चित्त कोलाहल से भर गया है, विक्षिप्त हो चला है तभी तो विध्वंस में उसे रस आने लगा है। अफगानिस्तान के बामियान में बुद्ध की विशाल प्रतिमा को जब तालिबानी तोप से ध्वस्त कर रहे थे तो उसमें उन्हें क्या मिल रहा था? केवल हजारों लोगों का दिल दुखाने का मजा। यह विक्षिप्त चित्त का लक्षण है।
अमेरिका के विद्यालयों में बच्चों द्वारा अंधाधुंध गोली चला कर अपने साथियों और शिक्षकों की हत्या करने की कई घटनाएं हो चुकी हैं। इसके मूल में गहराई से जाने पर समानता और सद्भाव के वातावरण का लोप हो जाना ही मुख्य कारण है। आज संपूर्ण वातावरण प्रतियोगिता और महत्वाकांक्षा से भर दिया गया है जबकि वैदिक काल का ऋषि बार–बार घोषणा कर रहा है कि हम सब एक ही परमात्मा की संतानें हैं और हम सब एक दूसरे को भ्रातृभाव,समभाव और मैत्रीभाव से देखें।
संस्कृत को परंपरावादी और अंग्रेजी को आधुनिकतावादी विचारों वाली भाषा होने का जब दुष्प्रचार किया जाता है तो इसमें कुछ लोगों का निहित स्वार्थ है। वह स्वार्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति को जड़ से नहीं काटा जाए तो वह सड़–गल नहीं सकता। जड़ से जुड़े रहने पर हमेशा जीवन ऊर्जा और प्राण को संबल मिलता रहता है। संस्कृत भाषा रूपी जड़ से जुड़े रहने पर समानता और सद्भाव को पोषण मिलता रहता है जिससे विराट और उदार चित्त का निर्माण होता है।
'जैसी दृष्टि,वैसी सृष्टि' की कहावत कहती हैं कि हमारा दर्शन हमारे जीवन की दिशा का प्रवर्तन करता है। भारतीय संस्कृति का प्रथम विषय दर्शन था और यह दर्शन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की मूल भावना से प्रेरित था। इसके अंतर्गत सिर्फ मनुष्य के प्रति ही नहीं बल्कि पशु–पंक्षियों से लेकर पेड़–पौधों तक के प्रति भी मंगल कामना की गई है।
कुछ लोगों का कहना है कि प्राचीन काल में सामूहिकता की प्रवृत्ति एक मजबूरी थी क्योंकि परस्पर– निर्भरता बहुत ज्यादा थी

और अकेले जीवन यापन करना संभव नहीं था। आज विज्ञान ने व्यक्ति को सारी सुख सुविधाओं से संपन्न कर दिया। फलतः व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति चरम पर पहुंच गई जो स्वाभाविक है। मेरा मानना है कि सिर्फ मजबूरी के ही कारण व्यक्ति एक दूसरे का साथ पसंद नहीं करता बल्कि मानव प्रवृत्ति भी ऐसी है कि बांटने पर सुख बढ़ जाता है और दुख घट जाता है। वस्तुतः हमारे ऋषियों को अस्तित्व का यह मूल रहस्य मालूम था कि स्वतंत्रता और परतंत्रता सिर्फ सैद्धांतिक शब्द हैं, जीवन का व्यावहारिक पक्ष तो परस्पर निर्भरता है। उस समय के समाज में भी अलगाव और संघर्ष की भावना थी तभी तो दिव्य दृष्टि वाले ऋषियों ने समष्टि,समानता और सद्भावना को प्रोत्साहित किया ताकि आसुरी प्रवृत्ति के कारण जीवन संकट में न पड़ जाए।

संदर्भ

1. यजु.30.3
2. यजु. 3.35
3. ऋ.1.114.10
4. ऋ.1.90.9
5. ऋ.8.98.21
6. वा.सं.9.21
7. वा.सं.32.10
8. वा.सं.2.11
9. ऋ.10.291.2
10. अथर्व. 3.30.6
11. अथर्व. 3.30.6
12. वा.सं. 18.9
13. अथर्व.3.30.6
14. यजु.36.18
15. अथर्व. 3.30.2
16. अथर्व. 3.30.5